पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
जामनगर, गुजरात
श्री समयसार कलश टीका, कलश ४४
तारीख: ११-१०-१९८८, प्रवचन ४९८

श्री समयसार कलश टीका, उसका अजीव नाम का दूसरा अधिकार, कलश नंबर ४४ है। ५-६ लाइन चली हैं। फिर से **खंडान्वय सहित अर्थ-** पेज ४६.

समयसार का क्या अर्थ है? समयसार अर्थात् शुद्धात्मा। वह शुद्धात्मा कहाँ रहता होगा? उसका रहने का स्थान कहाँ है? वह शुद्धात्मा, इस देह में होने पर भी देह से भिन्न रहा हुआ है, कहलाता है देह में परंतु देह में नहीं है। वह अपने अस्तित्व में, स्वरूप में विराजमान है। ज्ञान में, दर्शन में, चारित्र में आत्मा रहा हुआ है।

वह शुद्धात्मा, अनादिकाल से जीव ने अपने शुद्धात्मा के स्वरूप को जाना नहीं है, अनुभव नहीं किया है। उस शुद्धात्मा का स्वरूप ऐसा है कि जो राग-द्वेष-मोह से तीनोंकाल रहित है। सुख-दुःख के परिणामों से भी भिन्न है और ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म संयोगरूप से हैं, वे संयोग स्वभाव से भिन्न हैं। इस प्रकार ज्ञानमयी आत्मा जो स्वभाव है उससे यह देह-मन-वाणी भिन्न हैं। और भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से तीनोंकाल रहित है, ऐसा जो शुद्धात्मा, वह ज्ञान-दर्शन का पुंज है, परमात्मा है। अंदर परमात्मा विराजमान है, उसका नाम समयसार है। सार अर्थात् राग से रहित और सार अर्थात् यह उपादेयभूत तत्त्व शुद्धात्मा, उसे समयसार कहने में आता है।

उसमें, जीव अधिकार का वर्णन करने के बाद आचार्य भगवान को विचार आया कि अजीव अधिकार लिखूँ। अजीव अधिकार लिखने का हेतु, कारण यह है कि अनादिकाल से जीव अपने स्वभाव को भूलकर भटक गया है। जब अपने स्वरूप का भान नहीं है अर्थात् जीव से वे दूसरे पदार्थ, अजीव तत्त्व हैं, उन अजीव में जीवपने की भ्रांति कर बैठा है। देह को जीव मानता है, कर्म को जीव मानता है, राग को जीव मानता है, एक समय की पर्याय के भेद को जीव मानता है। हैं सभी अजीवतत्त्व। उस अजीव में जीव की भ्रांति हो गई है, इसीलिये 'यह अजीव है, यह अजीव है, यह अजीव है' देखना भूलना मत हों! यह अजीव है, जीव नहीं है। यह अजीव है परंतु जीव नहीं है। ऐसे बारंबार एक-एक बोल अलग-अलग कहकर समझाते हैं कि ध्यान रखना भाई।

प्रभु! भगवान तू है। आहाहा! तू अपने स्वरूप को भूल गया है। जैसे शराबी शराब पीकर भान भूल जाता है ऐसे तू अज्ञान से मोहित हुआ आत्मा, तेरा स्वरूप तो जैसा है ऐसा है विद्यमान, परंतु तुझे वह दृष्टिगोचर नहीं होता। क्यों? क्योंकि तू अजीव को जीव मान बैठा है। जो जीव नहीं है उसे तू आत्मा मान बैठा है इसलिये आत्मा तुझे दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिये अजीव अधिकार लिखने में आया। अजीव, अर्थात् जीव नहीं, उसका यह वर्णन चल रहा है। उसमें ४४ वाँ कलश है। ४६ पेज है।

खंडान्वय सहित अर्थ- अनंत काल से विद्यमान ऐसा जो जीव-अजीव की एकत्वबुद्धिरूप मिथ्या संस्कार उसरूप है धारासंतानरूप बारम्बार विभाव परिणाम, उसमें पुद्गल अर्थात् अचेतन मूर्तिमान द्रव्य निश्चय से अनादि काल से नाचता ह। क्या कहते हैं? कि अनादिकाल से आत्मा, आत्मा और अनात्मा, जीव और अजीव, दो पदार्थ स्वरूप से अपने अपने स्वभाव से भिन्न-भिन्न होने पर भी, जैसे आत्मा और देह भिन्न होने पर भी, आत्मा और देह उन्हें एक ही मानता है, देह को ही आत्मा मानता है, ऐसे राग को ही आत्मा मान बैठा है।

ऐसा जो जीव-अजीव की एकत्वबुद्धिरूप मिथ्या संस्कार अर्थात् मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। मिथ्यादर्शन अर्थात् झूठी विपरीत मान्यता, श्रद्धा। मिथ्याज्ञान अर्थात् आत्मा से भिन्न पदार्थ उन्हें अपना जानना, मिथ्याज्ञान। मिथ्याचारित्र (अर्थात्) राग में एकाकार हो जाना, लीन हो जाना, ज्ञान में लीन होने के बजाय राग में लीन हो गया है, उसे मिथ्याचारित्र कहने में आता है। वे तीन प्रकार के, त्रिदोष हुये हैं उन्हें एकत्वबुद्धि कहने में आता है। ऐसे संस्कार अनादिकाल से चले आ रहे हैं।

बारंबार विभाव परिणाम, अज्ञानरूप परिणमता है अर्थात् पर को अपना मानता है। स्व को भूलकर परभाव को और परद्रव्य को अपना मानना वह संसार का कारण है। उसमें वह अनादिकाल से अज्ञान में, राग-द्वेष-मोह में, वह आत्मा परिणमता नहीं है, आत्मा के वे परिणाम नहीं हैं परंतु वे पुद्गल के ही परिणाम हैं। क्योंकि पुद्गल के लक्ष से, पुद्गल के संग से होते हैं इसीलिये उन्हें पुद्गल के परिणाम कहने में आता है। अनादिकाल से पुद्गल, अजीव उसरूप परिणम रहा है। चेतन वस्तु परिणमती नहीं है, वह तो अपरिणामी, **शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम, दूसरा कहें कितना? कर विचार तो पाम।** (आत्म सिद्धि शास्त्र, गाथा ११७)।

तुझे मात्र विचार करने की जरूरत है। तू (बिना सोचे समझे) दौड़ रहा है, तू विचार नहीं करता है। स्थिर होकर विचार कर कि यह आकुलता चौबीसों घंटे जो होती है, उसका कारण क्या है? अपने स्वभाव को भूल गया है। वह परिणमता है कौन, राग-द्वेष-मोहरूप? कि पुद्गल परिणमता है। जीव ज्ञानरूप परिणमता है और पुद्गल अर्थात् द्रव्यकर्म, राग-द्वेष-मोहरूप परिणमता है। दो पदार्थों का परिणमन अलग-अलग है, भिन्न-भिन्न है। पदार्थ दो अलग-अलग हैं। एक जीव ज्ञानरूप परिणमता है अनादिकाल से जाननेरूप और पुद्गल राग-द्वेषरूप परिणमता है। अब उसकी ज्ञान की स्वच्छता में पुद्गल के परिणाम प्रतिभासित होने पर, देह प्रतिभासित होता है तो देह मेरा, दुःख प्रतिभासित होता है तो मैं दुःखी, मनुष्य की पर्याय जानने में आती है तो मैं मनुष्य। ऐसे अनादिकाल से अजीव में जीवपने की कल्पना, भ्रांति करके बैठा है। उसमें भी पुद्गल ही परिणमता है, जीव परिणमता नहीं है।

अब आगे। **भावार्थ इस प्रकार है - चेतनद्रव्य और अचेतनद्रव्य अनादि ह**। कोई कहे एक ही आत्मा है पूरे जगत में, ऐसा नहीं है। आत्मा और अनात्मा दो तत्त्व अलग-अलग हैं, जीव और पुद्गल दो अलग-अलग हैं। जीव चेतना स्वभावी है और पुद्गल जड़ स्वभावी है। पुद्गल में स्पर्श-रस-गंध-वर्ण होता है। **चेतनद्रव्य और अचेतनद्रव्य अनादि ह**। किसी संयोग से आत्मा की उत्पत्ति नहीं होती, वह स्वभाव से अनादि-अनंत आत्मा विराजमान है। इसीप्रकार पुद्गल भी अनादि-अनंत है, किसी संयोग से जिसकी उत्पत्ति नहीं होती। संयोग से उत्पत्ति हो तो वियोग से नाश हो, ऐसा तो है नहीं।

चेतनद्रव्य और अचेतनद्रव्य अनादि हैं, एक (बोल)। **अपना-अपना स्वरूप लिये हुए ह**। **जड़ भावे जड़ परिणमे, चेतन-चेतन भाव; कोई-कोई पलटे नहीं, छोड़ी आप स्वभाव** (राजपद, भक्ति २८, श्रीमद् राजचंद्र)। अपने-अपने स्वरूप से हैं, अपने-अपने स्वभाव से हैं। **परस्पर भिन्न ह**, चेतन और अचेतन परस्पर भिन्न अर्थात् अलग-अलग हैं।

ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम ह। ज्ञानी कहते हैं कि हमें तो दो पदार्थ अलग-अलग भासित होते हैं। जड़-चेतन हमें भिन्न-भिन्न ज्ञात होते हैं, हमें अनुभव में आते हैं। 'तुम एकपने क्यों अनुभव करते हो?', ऐसा कहेंगे। **ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम ह**, आसान है, सुगम अर्थात् आसान है।

अब अज्ञानी को कहते हैं कि **जिसको एकत्व संस्काररूप अनुभव है वह अचम्भा ह**, हमें तो आश्चर्य होता है। देह और आत्मा भिन्न होने पर भी तुझे देह और आत्मा एक क्यों लगते हैं? एक जैसे तुझे लगते हैं परंतु एक हो नहीं सकते। सोना और चांदी एक जैसे लगते हैं परंतु एक होते नहीं। उसीप्रकार पानी और मिट्टी, उनका संयोग हुआ (तो) पानी मैला कहलाता है। एक जैसे लगते हैं परंतु पानी भिन्न है, मिट्टी भिन्न है। इसीलिये हमें तो आश्चर्य और अचंभा होता है कि देह और आत्मा तुम्हें एक क्यों लगते हैं? तुम ऐसा क्यों मानते हो कि देह मेरा है? तुम्हें ऐसा क्यों नहीं लगता कि ज्ञान मेरा है और देह - जड़ का, उसका पुद्गल स्वामी है? तुम्हें ऐसा क्यों नहीं लगता? यह मकान मेरा है ऐसी क्यों कल्पना करते हो? क्योंकि उसका स्वामी तो पुद्गल है। उसका स्वामी कहीं चेतन तो हो नहीं सकता। तो तुझे क्यों ममता होती है पर में? हमें अचम्भा, आश्चर्य होता है, ऐसे। हमें तो भिन्न-भिन्न अनुभव हो गया। आहाहा! और तुम भी अनुभव करो तो हो सकता है भेदज्ञान से, सुगम है।

ऐसा अनुभव प्रगटरूप से सुगम है; जिसको एकत्व संस्काररूप अनुभव है वह अचम्भा ह, आश्चर्य होता है हमें। **ऐसा क्यों अनुभवता है?** प्रश्न करते हैं। **क्योंकि एक चेतनद्रव्य, एक अचेतनद्रव्य ऐसा अन्तर तो घन**, उन दोनों के बीच जुदाई तो बहुत है। एक में दूसरे का सर्वथा अभाव है, एक में दूसरे का सर्वथा अभाव है। **अथवा अचम्भा भी नहीं,** अथवा अब ऐसा कहते हैं कि आश्चर्य भी नहीं है। क्यों? **क्योंकि अशुद्धपने के कारण,** अज्ञान के कारण, अपने अज्ञान के कारण, कर्म के उदय के कारण नहीं, प्रतिकूल संयोग के कारण नहीं परंतु **अशुद्धपने के कारण** अर्थात् भेदज्ञान का अभाव वर्तता है तुम्हें ऐसा अज्ञान, स्व और पर का विभाग करनेवाला जो ज्ञान प्रगट होना चाहिये, वह ज्ञान प्रगट नहीं होता और स्व और पर एक भासित होते हैं ऐसा जो अशुद्धपना, उसके **कारण बुद्धि को भ्रम होता है।** आहाहा! बुद्धि बिगड़ गई है।

जड़ और चेतन एक तो होनेवाले नहीं हैं। मकान कभी भी किशोरभाई का नहीं होता, देह भी नहीं होता उसका, राग भी किशोरभाई का नहीं होता। किसी जीव का (राग) नहीं होता, यह तो किशोरभाई का तो नाम है, सभी को लागु पड़ता है। आहाहा! परंतु भ्रमणा हो गई है -यह मेरा, मेरा, मेरा करके मरता है। जो तीनोंकाल साथ में आता है ज्ञान, उसे भूल गया और जो संयोग साथ नहीं आते, उन्हें मेरा मानता है, हेमंतभाई। आहाहा!

मुमुक्षुः- बिल्कुल सही, धन्य घड़ी है!

उत्तर:- धन्य घड़ी है।

मुमुक्षु:- ऐसा मिले कहाँ से?

उत्तर:- नहीं मिलता हों।

मुमुक्षु:- हमारे महान भाग्य हैं।

उत्तर:- जो आत्मा के साथ तीनोंकाल आता है, कभी भी कोई भी जीव यहाँ ज्ञान छोड़कर बाहर नहीं जाएगा। (जीव) राग को छोड़कर, देह को छोड़कर, मकान को छोड़कर, संयोग को छोड़कर वह तो चला जाता है। परंतु जो ज्ञान लक्षण उपयोग है, वह तीनोंकाल, उसका जो लक्षण है वह तो उसके साथ ही साथ, परलोक में भी साथ ही जाता है। उपयोग यहाँ रह जाये और आत्मा अलग पड़ जाये, ऐसा नहीं बनता। शक्कर का मिठास लक्षण यहाँ रह जाये और शक्कर का टुकड़ा चला जाये बाहर, ऐसा कभी भी (नहीं बनता)। क्योंकि लक्षण और लक्ष्य (के बीच) तादात्म संबंध है उनका, टालने से टलता नहीं। इसीप्रकार ज्ञान और आत्मा एक पदार्थ है, ज्ञान जीव के साथ ही जाता है। राग यहाँ रह जाता है, द्वेष रह जाता है, दुःख-सुख रह जाता है, संयोग रह जाते हैं, कर्म रह जाते हैं परंतु जीव तो साथ ही साथ, ज्ञान के साथ जाता है। तो कहते हैं कि **एक चेतनद्रव्य, एक अचेतनद्रव्य ऐसा अन्तर तो घन**, जुदाई तो है। **अथवा अचम्भा भी नहीं, क्योंकि अशुद्धपने के कारण बुद्धि को भ्रम होता ह**, भ्रांति हुई है।

अब दृष्टांत देते हैं। **जिस प्रकार धतूरा पीने से दृष्टि विचलित होती है,** कोई धतूरा पी ले, दारू पी ले, धतूरा पी ले, वगैरह (तो) **दृष्टि विचलित होती है, श्वेत शंख को पीला देखती ह**। जैसे पीलिया हुआ हो और कपड़ा सफेद होते हुए भी पीलिया के रोगी को पीला कपड़ा है, ऐसा भासित होता है, परंतु उसे भासित होता है वैसा कपड़ा नहीं है, उसका भ्रम है वह। ऐसे ही **धतूरा पीने से दृष्टि विचलित होती है, श्वेत शंख को पीला देखती है, सो वस्तु विचारने पर ऐसी दृष्टि सहज की तो नह**, स्वाभाविक नहीं है, वह वैभाविक है। शंख पीला लगता है वह दृष्टि सच्ची नहीं है, शंख तो सफेद है। यह जो दृष्टि है वह सहज की तो नहीं है, अर्थात् स्वाभाविक नहीं है, वह वैभाविक है दृष्टि उसकी, धतूरा पीता है उसे भ्रम हो जाता है। **दृष्टिदोष ह**, आहाहा! वस्तु तो जैसी है वैसी है, दृष्टि का दोष है। **दृष्टिदोष को धतूरा उपाधि भी ह**, निमित्त भी है। अज्ञान है - नैमित्तिकभाव, उसमें एक निमित्त भी दूसरा है।

उसी प्रकार, दृष्टांत पूरा हुआ। **उसी प्रकार जीवद्रव्य अनाद** काल **से कर्म संयोगरूप मिला ही चला आ रहा ह**। स्वभाव के साथ एक दूसरा संयोगसंबंध हुआ है। स्वभाव और संयोग, वे दो चीजें अलग-अलग हैं, वे दो चीजें एक नहीं हैं। कपड़ा सफेद है, उसे लाल रंग का संयोग होता है, फिर वह संयोग निकल भी जाता है। ऐसे स्वभाव और संयोग...

इस तरफ आओ सभी नजदीक आ जाओ सभी। इस तरफ, मेरी तरफ आओ, मेरी तरफ आओ। त्रंबकभाई, आओ मेरे पास। शारीरिक तबियत के कारण मैं मंदिर नहीं आ सकता, इसीलिये दोपहर को यहाँ रखा है। बहन सुबह वहाँ जाती हैं।

दृष्टांत पूरा होता है, अब सिद्धांत में घटाते हैं। **उसी प्रकार जीवद्रव्य अनादि से कर्म**

संयोगरूप परिणमा हुआ **ह**। कर्म के स्वभावरूप परिणमा हुआ ऐसा नहीं लिखा, है लिखा हुआ? (नहीं)। कर्म के साथ जीव का संयोगसंबंध है, तादात्म्यसंबंध नहीं है। जैसे खांड के साथ मैल का संयोगसंबंध है, मैल तो निकल जाता है। जब बताशे बनाते हैं, तब गरम करते हैं, तो मैल तो (निकल जाता है)। मैल निकल जाता है (तो) साथ में मिठास निकलती होगी या नहीं?

मुमुक्षुः- नहीं, बिल्कुल नहीं।

उत्तरः- बिल्कुल नहीं निकलती? थोड़ी बहुत दस प्रतिशत पाँच प्रतिशत (निकलती होगी न)?

मुमुक्षुः- बिल्कुल नहीं।

उत्तरः- क्यों नहीं निकलती? कारण क्या है? क्योंकि स्वभाव और स्वभाववान भिन्न नहीं पड़ते, स्वभाव और संयोग तो भिन्न पड़ जाते हैं। यह तो बुद्धिगम्य है विषय, कोई ऐसा अंधश्रद्धा का विषय नहीं है। Logic (लॉजिक) से, न्याय से विचार करे तो बैठ जाये ऐसा है, न बैठे ऐसा कुछ नहीं है।

इसमें लिखा है कि **जीवद्रव्य अनादि से कर्मसंयोगरूप मिला ही चला आ रहा है,** कर्मरूप परिणमा है ऐसा नहीं लिखा, कर्म के संयोग के साथ मिला हुआ है। जैसे खान में से सोना निकलता है तो सोने के साथ मिट्टी मिली हुई होती है, उसे स्वर्ण पाषाण कहने में आता है। खान में से शुद्ध सोना नहीं निकलता, मिट्टी के साथ मिला हुआ होता है। परंतु सोना वह तो स्वभाव है, और मिट्टी वह तो संयोग है। मिट्टी का मिलना, सोने के साथ संयोगरूप है, स्वभाव के साथ एकत्व नहीं पाता, इसीलिये process (प्रक्रिया) करने पर मिट्टी निकल जाती है और स्वर्ण शुद्ध प्राप्त हो जाता है।

ऐसे ही **जीवद्रव्य अनादि से कर्मसंयोगरूप मिला ही चला आ रहा ह**, राग का संयोग, सुख-दुःख का संयोग, कर्म का सांयोग, शरीर का संयोग। आहाहा! यह मकान तो भिन्न ही है, इसलिये उसकी बात तो जाने दो, वह तो दूर है। वह तो भिन्न दिखता है। परंतु यह कारखाने जाता है तो शरीर साथ में आता है, आठ कर्म साथ में आते हैं, 'यह फैक्टरी मेरी' ऐसा राग भी साथ में संयोगरूप से आता है। वह जीव के साथ एकमेक, चेतन और जड़, एकमेक नहीं होते। आहाहा! जीव के स्वभाव के साथ, ज्ञानमय-आनंदमय परमात्मा के साथ, ऐसा एक संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है, जैसे सोने के साथ मिट्टी का संयोग है खान में, ऐसे।

चला आ रहा है, मिला होने से विभावरूप अशुद्धपने से परिणत हो रहा ह कि मानो यह देह मेरा, यह शरीर मेरा, राग मेरा, ऐसे अनादिकाल से मिथ्याभ्रांति से अज्ञानरूप से आत्मा परिणम रहा है। **अशुद्धपने के कारण ज्ञानदृष्टि अशुद्ध ह**। ऐसी ज्ञान में भ्रांति हो गई है कि देह मेरा, वह ज्ञान का अज्ञान कर डाला। **ज्ञानदृष्टि अशुद्ध ह**, भेदज्ञान करे तो ज्ञानदृष्टि शुद्ध हो जाये, भिन्न-भिन्न है ऐसा जाने तो देह में ममता छूट जाये, राग में ममता छूट जाये। **ज्ञानदृष्टि अशुद्ध है,** अर्थात् अज्ञान है, ज्ञान का अज्ञान कर डाला।

उस अशुद्ध दृष्टि के द्वारा, ऐसे अपने अज्ञान के द्वारा, **चेतन द्रव्य को पुद्गल कर्म के साथ**, हैं दोनों भिन्न-भिन्न तथापि **एकत्व संस्काररूप अनुभवता ह**। मानो - पुद्गल और जीव दोनों एक हों, शरीर और आत्मा एक हों, राग और आत्मा एक हों, दुःख और आत्मा एक हों। दुःख और आत्मा एक नहीं हैं! दुःख का जाननेवाला है परंतु दुःख का भोगनेवाला नहीं है। आहाहा! दो चीज भिन्न-भिन्न हैं,

एक चेतन और एक जड़-अचेतन। **एकत्व संस्काररूप अनुभवता ह**, अनुभवता है अर्थात् उसका अनुसरण करके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमता है। अनुभवता है अर्थात् उसका अनुसरण करके एकपने की मान्यता से परिणमता आत्मा।

ऐसा संस्कार तो विद्यमान ह, यह मिथ्या संस्कार अनादिकाल से विद्यमान है, नहीं है ऐसा नहीं। पर्याय में भूल है, जीव नहीं भूलता, परिणाम भूलता है। भूल परिणाम में होती है, जीव में भूल नहीं होती। जिसमें भूल नहीं होती वह आत्मा है और भूल करता है वह अनात्मा है। भूल किसने की है? अनात्मा करता है, भगवान आत्मा भूल नहीं करता, वह तो भिन्न है। उसे मानो एक हो गया हो, भूल और भूल बिना की वस्तु एक हो गई हो, ऐसा उसे भासित होता है। पानी और मिट्टी की पर्याय मलिन जो है, वह मिट्टी और स्वच्छ पानी मानो एक हो गये हों, ऐसा उसे लगता है, परंतु एक होते नहीं। फिटकरी डालने पर मैल अलग पड़ जाता है और स्वच्छ पानी प्राप्त होता है।

ऐसा संस्कार तो विद्यमान है, स देखो **वस्तुस्वरूप विचारने पर**, आया? दो वस्तुओं को दोपने देखने पर, भिन्न-भिन्न देखने पर भिन्न ही तुम्हें दिखेंगी, एकपने नहीं दिखेंगी। **विचारने पर ऐसी अशुद्ध दृष्टि सहज की तो नहीं, अशुद्ध है, दृष्टिदोष ह**। आहाहा! भ्रमणा हो गई है, ममता हो गई है - मेरा, मेरा, मेरा, मेरा। आहाहा! एक रजकण भी आत्मा का होता नहीं है। परलोक में जाता है तो कोई रजकण यहाँ से ले जाता है कोई? हें? जयसुखभाई गुरुदेव के पास आते थे, हें? भाई के भाई, किन्तु गये, कुछ यहाँ से ले गये? समझ ले गये। गुरुदेव के परिचय से साथ में समझ ले गये हैं। अनसमझ छोड़कर समझ लेकर गये, अन्यथा रजकण साथ में ले नहीं जाता कोई।

मुमुक्षुः- अंत तक मैं जाता हूँ।

उत्तरः- बस मैं जानता हूँ।

मुमुक्षुः- जाता हूँ, जाता हूँ।

उत्तरः- जाता हूँ, जाता हूँ। आहाहा! उन्हें अंत-अंत में गुरुदेव के परिचय से... परंतु आयुष्य अल्प नहीं तो वह जीव ऐसा था (कि) काम निकाले।

सो वस्तुस्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्ध दृष्टि सहज की तो नहीं, स्वाभाविक नहीं है, वैभाविक है। शरीर में बुखार आता है वह स्वभाव है? शरीर का विभाव है। (बुखार) आत्मा का तो विभाव भी नहीं है और स्वभाव भी नहीं है, परंतु वह पुद्गल का, शरीर का विभाव है। तो विभाव कब तक (रहता है)? वह थोड़े टाइम रहता है। डॉक्टर कहता है तीन दिन दवा लो (तो) मिट जायेगा। किसी को ऐसा लगता है कि यह बुखार हमेशा रहेगा? किसी को नहीं लगता। हें? विभाव है वह निकल जायेगा। ऐसे ही, ऐसा लगना चाहिये कि यह अज्ञान है वह विभाव है, स्वभाव दृष्टि करने पर इस अज्ञान का अभाव हो जायेगा। आहाहा! **वस्तु स्वरूप विचारने पर ऐसी अशुद्ध दृष्टि सहज की तो नह**।

और दृष्टिदोष को पुद्गल पिंडरूप मिथ्यात्वकर्म का उदय उपाधि ह, निमित्त है। नैमित्तिकभाव होता है अज्ञान, तब कर्म के उदय आदि को निमित्त कहने में आता है। कर्म के उदय से राग नहीं होता, शुद्धात्मा के स्वभाव को छोड़ता है और पर में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करता है तो राग होता है। राग होता है तब कर्म के उदय को निमित्त कहने में आता है। दो वस्तुयें अलग-अलग हैं, कर्म

अजीव- जड़ है और राग आस्रवतत्त्व है और उनसे भिन्न जीवतत्त्व है। जीव अलग, आस्रव अलग और कर्म भी अलग, कोई किसी के कारण नहीं। जीव के कारण राग नहीं होता, कर्म के कारण राग नहीं होता, राग के कारण कर्म नहीं बंधते। कर्म बंधते हैं कर्म के कारण, राग होता है राग के कारण, उनसे पृथक जाननहार, जाननहार, जाननहार पृथक ही पृथक है। आहाहा! दूसरा दूसरे को करता है, जीव तो जाननहार है। दूसरा दूसरे को करता है तो करो, मैं तो अकर्ता - जाननहार हूँ, ज्ञाता हूँ। आहाहा!

मुमुक्षुः- रोबोट (robot) करता है।

उत्तरः- रोबोट काम करता है, मैं तो जाननहार हूँ। यह रोबोट है सब। आहाहा! अभी रोबोट का बहुत चल रहा है foreign (परदेश) में। यह (शरीर) भी रोबोट है हों! आहाहा! शरीर रोबोट है। चेतन जानता है, चेतन कोई काम नहीं करता। रोबोट करता है, चेतन जानता है कि यह रोबोट काम करता है। वह रोबोट काम करता है उसके बजाय 'मैं करता हूँ' वह अज्ञान। करता है रोबोट काम, और मानता है कि 'मैं करता हूँ' वह अज्ञान हो गया। आहाहा! रोबोट करता है, दूसरा करता है, मैं तो जाननहार हूँ तो ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! थोड़ा पुरुषार्थ माँगता है। ऐसे के ऐसे, तुरंत ही में यह बैठ जाये, ऐसा भी नहीं है।

आगे जिस प्रकार दृष्टिदोष से श्वेत शंख को पीला अनुभवता ह, भले पीला लगे उसे। **तो फिर दृष्टि में दोष है, शंख तो श्वेत ही है,** सफेद, सफेद है, भले पीला भासित हो। पीला लगे तो कहीं पीला नहीं हो जाता। संयोग में सुख की कल्पना करे, किन्तु संयोग कहीं सुख देता है? (ना)। क्योंकि संयोग में सुख नहीं है। संयोग हैं, बाहर के अनुकूल मोटर और बंगला और ये सब, ये संयोग हैं। संयोग कहीं सुख देते हैं? (ना), क्योंकि वे जड़ पदार्थ हैं, उनमें सुख नहीं है, और वे दुःख भी नहीं देते। दुःख देता है अज्ञान और सुख देता है ज्ञान। और सुख-दुःख को देनेवाला (भगवान आत्मा नहीं है)। भगवान आत्मा तो जानता है, कि पर्याय में सुख भी होता है और दुःख होता है, उससे मैं भिन्न हूँ। आहाहा!

जिस प्रकार.. पीला देखने पर शंख तो पीला हुआ नहीं है; उसी प्रकार मिथ्या दृष्टि स, विपरीत मान्यता से, **चेतनवस्तु और अचेतनवस्तु को एक कर अनुभवता ह**, भले एकमेक उसे भासित होता है, भ्रांति से, **अनुभवता है तो फिर दृष्टि का दोष है, वस्तु जैसी भिन्न है वैसी ही है।** आहाहा! यह देखो। अपने-अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में, स्वचतुष्टय में हैं। आत्मा अपने स्वचतुष्टय में है और पुद्गल अपने स्वचतुष्टय में है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उसके अलग और आत्मा के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव (अलग), दोनों भिन्न-भिन्न वस्तु हैं। हैं संयोगरूप से साथ में फिर भी एकमेक नहीं होते।

वस्तु जैसी भिन्न है वैसी ही है, एक कर अनुभवने पर, **अनुभवने पर** -ऐसा मानने पर, जानने पर, **एक नहीं हुई ह**। देह और आत्मा एक नहीं होते, एक मानता है लेकिन जब गुजर जाता है तब? (अज्ञानी कहे की) तब अलग. जब जीव चला जाता है तब देह और आत्मा अलग? परंतु तू जीवित है तब देह और आत्मा अलग हैं ऐसा स्वीकार ले न! मरने के बाद तो इस खोल को जला देंगे। और बड़ी लकड़ियाँ डालेंगे और यदि ऐसे हो जाये तो लकड़ी मारेंगे। हें? तो उस (मरण) समय दिखता है कि देह और आत्मा अलग हैं। मरने के बाद तो दिखता है, तो जीवित रहते अलग हैं ऐसा जान ले न, तेरा काम हो जाये! ममता छूट जाती है, देह रह जाती है, हों! हाँ, ममता छूट जाये तो देह को जला नहीं

देंगे, तुझे घबराने की जरूरत नहीं है। ममता छूटती है, देह रह जाती है। ममता छूटती है तो संसार छूट जाता है। ममता छूटी अर्थात् (संसार छूट गया)। ममता का संसार है, देह रह जाती है, संयोग रह जाते हैं, ममता छूट जाती है। आहाहा! ममता छोड़ दे न? आहाहा! मरने के बाद भिन्न करना उसके बजाय (जीवित रहते ममता छोड़ दे)। आहाहा! मौत आती है तब रोते हैं बहुत से, हाय-हाय! ये सारा वैभव कमाया, अब मुझे वहाँ यह छोड़कर जाना पड़ेगा, ये भोग, मुझे भोगने का आया नहीं काल। आहाहा! रोते हैं हों! जोर-जोर से। डॉक्टर कहता है 'बस, मुद्दत थोड़ी है तुम्हारी, सगे-संबंधियों को बुला लो'। हो गया। आहाहा! भाई! देह और आत्मा तीनोंकाल अलग-अलग हैं, एक नहीं हैं। एक जड़ और एक चेतन। तो ममता छोड़ दे न? आहाहा! ममता छूटी, संसार छूट गया, ममता कहो या मोह कहो।

यहाँ कहते हैं भिन्न-भिन्न हैं, एक कभी नहीं होते। एक माने तो (भी) एक नहीं होते। **एक कर अनुभवने पर एक नहीं हुई ह**। दोनों वस्तुयें भिन्न-भिन्न हैं। पानी और मिट्टी दोनों भिन्न-भिन्न हैं। पानी गरम होता है तब शीतल पानी का स्वभाव और उष्णता अग्नि की है वे दोनों भिन्न-भिन्न हैं। पानी उष्ण नहीं हुआ, पानी गरम नहीं हुआ। (पानी उष्ण हुआ-) वह भ्रांति है। अग्नि गरम है, पानी तो शीतल है। किस समय? कि पानी गरम है ऐसा व्यवहारी लोग कहते हैं तब। आहाहा! पानी गरम होता ही नहीं। आज तक कोई पानी गरम नहीं हुआ। जो गरम होता है न? वह अग्नि गरम है। लक्षण भेद से भेद है। उष्णता अग्नि का लक्षण है, शीतलता पानी का लक्षण है। लक्षण भेद से भेद है। आहाहा!

इसीप्रकार आत्मा ज्ञानमय है, और राग है वह जड़भाव है, एक चेतन और एक जड़भाव है। क्योंकि एकपने **अनुभवने पर एक नहीं हुई है, क्योंकि घना अन्तर ह**, जुदाई बहुत है, अंतर अर्थात् दोनों के बीच जुदाई बहुत है। **कैसा है अविवेकनाट्य?** अविवेक अर्थात् कि अज्ञान, एकपने की मान्यता। **कैसा है अविवेकनाट्य** (अर्थात् जीव-अजीव की एकत्वबुद्धिरूप विभाव परिणाम)**? अनादि से एकत्व-संस्कारबुद्धि चली आई है ऐसा है।** आहाहा! एकपने की मान्यता मानकर, मरकर चारगति में भटकता है, उसका छुटकारा नहीं होता। ममता साथ में लेकर गया। देह तो छोड़कर गया परंतु देह की ममता? देह न हो तो भी देह की ममता साथ जाती है। देह साथ में जाये तो ममता जाये साथ में ऐसा नहीं है। क्या कहा? कि देह है तो ममता होती है और देह जाये तो ममता छूट जाती है, ऐसा नहीं है। देहादि - पर, मेरे हैं ऐसी मिथ्याबुद्धि साथ में लेकर जाता है, मिथ्या संस्कार।

अनादि से एकत्व-संस्कार बुद्धि चली आई ह। लो! **ऐसा है। और कैसा है अविवेकनाट्य?** आहाहा! भेदज्ञान का अभाव उसे अविवेक दृष्टि कहने में आता है। मूर्खता से भरी दृष्टि। **जिसमें थोड़ासा विपरीतपना नहीं है,** आहाहा! **घना विपरीतपना है।** सर्वथा विपरीतपना है!

कैसा है पुद्गल? अब पुद्गल - अचेतन और चेतन, इन दो के भेदज्ञान का प्रकार बताते हैं उनके लक्षण से। **कैसा है पुद्गल? 'वर्णादिमान्'**, जिसमें **स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण से संयुक्त** अर्थात् सहित **है।** पुद्गल तो अपने गुणों से सहित है और आत्मा राग से रहित है, ऐसा कहना है। **और यह जीव वस्तु ऐसी ह**। पूद्गल कैसा है? कि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से सहित है। और यह आत्मा कैसा है? यह किसके आत्मा की बात (है)? स्वयं के आत्मा की। कब? कि अभी। कब? कि अभी। यह सुनने का जो राग होता

है न? सुनने का जो विकल्प अर्थात् राग, शुभराग है यह। शास्त्र स्वाध्याय का जो राग है, अपना स्वरूप समझने का जो भाव जागा है, वह भाव राग है। उस राग से आत्मा भिन्न है, अभी, तीनोंकाल। मैं सुनता हूँ, (वह) नहीं, मैं जाननहार हूँ। सुननेवाला अलग और जाननहार अलग। शुभाशुभभाव करनेवाला अलग और जाननहार अलग। आहाहा! कब? कि तीनोंकाल। जरा किशोरभाई मेहनत करनी पड़ेगी।

मुमुक्षुः- तो समझ में आये ऐसा है।

उत्तरः- (हाँ), चिमनभाई को प्रमोद आ गया। प्रमोद आये ऐसी बात है, अपने घर की बात है, सुखी होने की बात है। बनारसीदासजी हो गये हैं चार सौ वर्ष पहले, (वे) ऐसा कहते हैं 'एक समय की कमाई तू अनंतकाल खायगो' (श्री स्वामी समन्तभद्र आचार्य रचित रत्नकरण्ड श्रावकाचार परिशिष्ट-१)। कमाई एक समय की, अर्थात् एक बार भेदज्ञान करके, अभेद शुद्धात्मा का यदि अनुभव किया और अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लिया, एक समय के लिए स्वाद आया, ऐसा जो सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ तो कहते हैं कि अनंतकाल उसे दुःख नहीं आयेगा, सुख-सुख के ढेर आयेंगे। थोड़ा सुख शुरु हुआ वह सुख पूर्ण होकर परमात्मा हो जायेगा। आहाहा! एक समय की कमाई।

यह तो पूरी जिंदगी कमाई, भार ढोता है अस्सी वर्ष तक, तो भी गद्दी नहीं छोड़ता। उसका पुत्र पचास वर्ष का हो जाये कि बापा अब दुकान पर न आयें तो अच्छा। क्या? आहाहा! ममता छूटती नहीं। गुरुदेव कहते थे कि व्यापारी को तो छुट्टी नहीं मिलती, लेकिन सरकारी नौकरी होती है न, उसे तो ५८ वर्ष की मुद्दत होती है, अनिवार्य retired (निवृत)। गुरुदेव को तो सब पता होता था न। आहाहा! तीव्र लोभ कषाय होवे न, दुकान की गद्दी छोड़ता नहीं। और कोई भाव पूछने आये तो भी बापा ही भाव कहता है, उसे भाव कहने की मनाही। यह सब बनता है हों!

मुमुक्षुः- ८० वर्ष की कमाई एक समय में गँवाई। मृत्यु के पश्चात एक समय में चली जानेवाली (है)।

उत्तरः- समाप्त। आहाहा!

मुमुक्षुः- और वह एक समय की कमाई अनंतकाल रहेगी।

उत्तरः- आहाहा! यह (भव) तो ८० वर्ष में पूरा होवे अर्थात् राम बोलो भाई राम! आहाहा! ७०-७५ तक लोग भार ढोते रहते हैं, पैसा होते हुए भी। न होवे और भार ढोए वह तो क्षम्य है, वह तो क्षम्य है। संसारी जीव है, कहीं हाथ फैलाना ना पड़े उस हिसाब से सही है। श्रीमद्जी ने तो यहाँ तक कहा है, धीरुभाई, कि यदि तुझे आजीविका का साधन मिल गया हो तो बस करना और आत्मा का हित कर लेना। धीरुभाई का तो नाम है हों, बाकी सभी को लागु पड़ता है। यदि तुझे आजीविका का साधन मिल गया हो तो बस करना। आहाहा! आत्मा का हित कर ले, मौका मिला है। मनुष्यभव मिलना बहुत मुश्किल है। आहाहा! अनंत-अनंतकाल से निगोद में पड़ा था। उसमें, दौलतरामजी तो कहते हैं कि एकेन्द्रिय में से दो इन्द्रिय में जहाँ आया वहाँ (चिन्तामणि)रतन की प्राप्ति हो गई, दो इन्द्रिय में (छहढाला, पहली ढाल, गाथा ५)। क्योंकि बड़ी मुश्किल से दो इन्द्रिय उसे मिली। एकेन्द्रिय में था निगोद में, आलू और लहसन-प्याज में आहाहा! उसमें (से बाहर आकर) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंच इन्द्रिय, संज्ञी मनुष्य हुआ। आहाहा!

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिले, समझने की जिज्ञासा भी हुई, अब प्रमाद करने जैसा नहीं है। आहाहा! अभी बाजी हाथ में है, आयुष्य पूरा न होवे तब तक बाजी हाथ में है। लेकिन मेरा आयुष्य लंबा है ऐसी कल्पना मत करना, तो प्रमाद आ जायेगा। आहाहा! भले घर की स्त्रियों और बच्चों को लगे, ऐसा ही कहना कि मेरा आयुष्य थोड़ा है इसीलिये मुझे तो धर्मध्यान कर लेना है। मुझे एक ज्योतिषी ने कहा है, ज्योतिषी ने कहा है, थोड़ी बनावट करनी आत्महित के लिये। ज्योतिषी ने कहा है कि तुम्हारा आयुष्य थोड़ा है, तुम्हें जो करना हो (तुरंत) (वह कर लेना)। वह नहीं कहते will (विल, वसीयतनामा) करनी हो तो कर लेना। ऐसे घर में ऐसे बात करनी कि आयुष्य थोड़ा है, मुझे ज्योतिषी ने कहा है, अब मुझे कहीं दुकान पर जाना नहीं है। आहाहा! तो (कहता है) लेकिन खर्चा बहुत है। परंतु ब्याज कितना आता है? कि खर्च से तीन गुना। तो अब छोड़ न सिरफोड़ी! यह तो उदाहरण। कमाई यह तो किसी को कुछ, किसी को कुछ, कारखाना (या) दूसरा, तीसरा। आहाहा!

परपदार्थ के पीछे पड़ गया है जीव, परपदार्थ आत्मा का तीनकाल में होनेवाला नहीं है, एक रजकण भी साथ में आता नहीं है। आहाहा! लोभ कषाय की भी कोई हद होती है, मर्यादा। पहले के काल में तो परिग्रह का परिमाण करते थे, कि इतना हो जाये तो संतोष, बस है, मुझे कुछ करना नहीं है। यह तो कोई माप ही नहीं, आशा का गड्ढा, तृष्णा का गड्ढा भरता नहीं। पहले ऐसा कहता है कि 'भाई, साधारण स्थिति है और अपने लाख रूपया होंगे तो निवृत्ति लेकर धर्मध्यान करेंगे'। लाख हो जायें तो पाँच लाख (की इच्छा करता है), और पाँच लाख हो जायें तो पच्चीस लाख (की इच्छा करता है), उसकी कोई मर्यादा-limit (नहीं है)।

वापस लड़के के लिये कमाता है, और लड़का धक्का मारता है और पिंजरापोल में जाना पड़ता है बाप को, ऐसा समय आ गया है। हाँ! है दिखता है सब आजकल, बनता है। वृद्धाश्रम, एक माँ जी के तीन पुत्र हैं, उनको वृद्धाश्रम (में भेजने) की व्यवस्था चल रही है। मनुभाई आये नहीं हैं न आज, मनुभाई के साथ बात हुई थी वृद्धाश्रम में व्यवस्था करनी है माँ जी की। याद करना न फोन से जरा, जांच कर लेवें। सोनगढ़ में रहते थे, अब जरा तकलीफ है। धूर्तों की टोली है, पापा पापा कहते हैं। आहाहा! परंतु यदि जरा सा अपनी इच्छानुसार नहीं हुआ (तो) ये कौन पापा और कौन पुत्र, हो गया।

लंदन में मैं गया था। माँ-बाप, बाप या माँ बीमार पड़े, तो हॉस्पिटल में भेज देते हैं। और हफ्ते में, पंद्रह दिन में, महीने में वे हालचाल पूछने जाते हैं, कैसे हो? बोलो! आहाहा! ऐसी स्थिति है। स्वार्थ के सगे हैं सभी। आचार्य भगवान कहते हैं, हों! धूर्तों की टोली है, ध्यान रखना। स्वार्थ के लिये सारी बाजी है, अन्यथा बात में कुछ माल नहीं है। एक आत्मा शरण है बाकी कुछ इस जगत में शरण नहीं है, ज्ञानी पुकार करके कहते हैं।

अनादि से एकत्व-संस्कार बुद्धि चली आई है ऐसा है। और कैसा ह ...नीचे **पुद्गल? स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण से संयुक्त**, सहित **है। और यह जीव वस्तु ऐसी ह**। कैसी है? **राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे असंख्यात लोकमात्र अशुद्धरूप जीव के परिणाम - उनसे रहित है।** नीचे पढ़ो, उनसे रहित होगी नहीं, अभी है। खांड का मैल, खांड से इसी समय भिन्न है, भले संयोगरूप से है, उसकी प्रोसेस न की हो तो भी मैल और खांड दोनों नितांत भिन्न हैं। इसीप्रकार चेतन वस्तु आत्मा और

राग-द्वेष-सुख-दुःख के परिणाम, उन राग-द्वेष-सुख-दुःख के परिणाम से भगवान आत्मा भिन्न, नितांत अलग है। वे परिणाम मेरे हैं ऐसा तुझे भासित होता है, वे परिणाम तेरे नहीं हैं क्योंकि उनमें चेतन की निशानी नहीं है, वह जड़ की निशानी है उनमें।

अनादि बंध पर्याय से विभाव परिणाम -उनसे रहित है ऐसी निर्विकार, विकार रहित शुद्ध **है ऐसी शुद्ध चिद्रूप वस्तु उसरूप है सर्वस्व जिसका ऐसी है।** यह मेरा आत्मा तो शुद्ध है तीनोंकाल। शुद्ध क्यों है? कि राग से रहित हूँ, अभी, इसीलिये शुद्ध रह गया। आहाहा! वह शुद्धता वह मेरी, और अशुद्धता - रागादि वह पुद्गल का भाव है, वह मेरा भाव नहीं है। ये दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम, भगवान की पूजा के भाव पुद्गल के होंगे या जीव के?

मुमुक्षुः- पुद्गल के।

उत्तरः- जीव करता है या पुद्गल? यह सुबह के पहर में भाई जाते हैं, सुबह के ५-६ बजे। आहाहा! विकल्प उठता है भगवान की पूजा का, अभिषेक का राग उठता है, आता है परंतु वह राग है वह कर्तव्य नहीं है। आता है लेकिन करने जैसा है और वह धर्म का कारण है ऐसा मानने जैसा नहीं है। आये बिना रहता नहीं, ज्ञान जाने बिना रहता नहीं, और ऐसा जाने कि मेरा नहीं है तो काम हो। वह कर्तव्य मेरा नहीं, वह क्रिया दूसरा करता है। आहाहा! करनेवाला दूसरा और जाननेवाला दूसरा है। करनेवाले से जाननेवाला भिन्न रहता है। करनेवाला करता है परंतु जाननेवाला उसमें, उस क्रिया में एकमेक नहीं होता, आत्मा उस-मय नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षुः- अपने में ऐसा पड़ा है कि खिसकता ही नहीं है।

उत्तरः- खिसकता नहीं, और राग में जाता नहीं, और राग ज्ञान में आता नहीं, तो भी यह क्रिया मैंने की ऐसी मिथ्या मान्यता छोड़ता नहीं है। आहाहा! छोड़ता नहीं है, कोई छुड़वाता नहीं है, ऐसा नहीं! स्वयं छोड़ता नहीं है।

भेदज्ञान का प्रकार अलौकिक है। एक बार प्रश्न आया (था) राजकोट में। समयसार के वांचन में तो दृष्टिप्रधान कथन अतः स्वभाव की ही बात होती है। उसमें कोई शुभाशुभभाव करने जैसे हैं, पाप के परिणाम छोड़ने जैसे और पुण्य करने जैसा, ऐसा तो कुछ आता नहीं, क्योंकि वह तो अज्ञान का कारण है। वह तो अज्ञान की दशा है। मैं वांचन उस समय करता था, बहुत वर्ष पहले की बात है। उसमें एक भाई (ने) कहा कि 'भाई आप यह निश्चय की बात तो ठीक करते हो लेकिन साथ-साथ थोड़ी व्यवहार की बात करते जाओ, तो ठीक रहेगा समाज को, सभी को, हमको। ' मैंने कहा 'कल से व्यवहार की बात भी मैं साथ-साथ करूँगा।' खुश, खुश हो गये, उसे ऐसा लगा कि जैसे शुभभाव करना ऐसा उपदेश देंगे। समझ गये? मैंने कुछ ऐसा कहा नहीं। मैंने कहा 'कल से मैं व्यवहार की बात करूँगा।' समझ गये? प्रसिद्ध व्यक्ति है, नाम नहीं लिया जाता। दूसरे दिन कहा कि 'पुण्य-पाप से आत्मा भिन्न है ऐसा बारंबार विचार करना, उसका नाम व्यवहार है'। उसे चोट लगी, उल्टा पड़ा उसे, सोचा था कुछ और निकला कुछ। आहाहा! शुभभाव को करना वह अज्ञान है। और शुभभाव मेरे से भिन्न है ऐसा जानना वह व्यवहार है। और आत्मा को जानना वह निश्चय है। वीटी(भाई) समझ में आया? फिर से।

एक बार गुरुदेव को एक प्रश्न (किया)। छोटुभाई वीराणी ने प्रश्न किया, मुंबईवाले हैं, करोड़पति

व्यक्ति हैं (लेकिन) नरम। रात की चर्चा में आते रोज, दोपहर के व्याख्यान में भी आते। रात को उन्होंने प्रश्न किया, कि आप कहते हो साहेब, कि आत्मा का अनुभव वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है, पुण्य से धर्म होता (नहीं)। पुण्य से तो बंध होता है परंतु मोक्ष नहीं होता। तो एक प्रश्न मेरा है कि पाप तो हमें करना नहीं है, क्योंकि पाप करेंगे तो-तो नीची गति में (जायेंगे)। और आर्य जीव हैं, जैनकुल में जन्में हैं इसलिये पाप के विचार तो हमें आते नहीं। और आत्मा का अनुभव होता नहीं है, तो बीच में रहा पुण्य, तो वह करना या नहीं करना? पाप हमें करना नहीं है और आत्मा का अनुभव होता नहीं है, वहाँ तक पहुँचा नहीं जाता। आप कहते हो (वह) बात सत्य है, (परंतु अनुभव तक) पहुँच नहीं पाते, तो पुण्य करना कि नहीं करना?

गुरुदेव ने ऐसे जवाब दिया, कि 'जब पुण्य के परिणाम आयें तब उनसे मेरा आत्मा भिन्न है, ऐसा बारंबार विचार करना'। पुण्य करना ऐसा भी नहीं कहा और नहीं करना ऐसा भी (नहीं कहा)। क्योंकि करने न करने का प्रश्न ही नहीं है। होता है उससे आत्मा जुदा है, ऐसा जानने का प्रयत्न करना, उसका नाम व्यवहार है। लो! यह व्यवहार। और आत्मा को प्रत्यक्ष अनुभवना उसका नाम निश्चय। आहाहा! मुँह इतना (छोटा) हो गया उसका (प्रसिद्ध व्यक्ति का) कि हमारा तो कुछ आया नहीं। तुम्हारा कहाँ से आवे इसमें!

कुंदकुंद भगवान ने जो शास्त्र लिखे, वह आत्मा राग का करनेवाला है, और शुभभाव करे तो धर्म होता है, पुण्य करते-करते धर्म होता है, इसके लिये शास्त्र की उत्पत्ति नहीं है। आहाहा! पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न आत्मा को लक्ष में ले, उसकी दृष्टि कर, उसका अनुभव कर तो संसार का अंत आयेगा। पुण्य तो यहाँ गले पड़ा है हरेक के। आहाहा!

मुमुक्षुः- साता का उदय हो तो अच्छा। साता का उदय हो तो अच्छा न?

उत्तरः- साता का उदय हो तो सुख होवे, ऐसा? ऐसा मानता है। वह मान्यता सच्ची है?

मुमुक्षुः- वह मान्यता सच्ची होगी? उसका फल तिर्यंच का ही मिलता है।

उत्तरः- आहाहा! तिर्यंच में ही जाता है जीव, थोड़े टाइम रहता है (बाहर त्रस में), हवा खाने के लिये निकलता है। आहाहा! करना तो आत्मा के स्वभाव में नहीं है, जानना स्वभाव में है। आत्मा जाननेवाला है, करनेवाला नहीं है। और जाननेवाले को जानो तो धर्म होता है। कर्म को जानो तो भी कर्म बंधते हैं, राग को जानो तो भी कर्म बंधते हैं, देव-गुरु-शास्त्र को जानो तो भी कर्म बंधते हैं। आत्मा को जानो तो कर्म की निर्जरा होती है, नया बंध नहीं होता और पुराने की निर्जरा हो जाती है। आहाहा! ऐसी बात है।

शुद्ध चिद्रूप वस्तु उसरूप है सर्वस्व जिसका ऐसी है। निर्विकार है ऐसी शुद्ध चिद्रूप वस्तु उसरूप है सर्वस्व जिसका ऐसी है। भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार पान, अब दृष्टांत देते हैं। **पानी कीचड़ के मिलने पर मैला ह**। मिट्टी का संयोग हुआ तो पानी मैला है। पानी मैला नहीं है, पानी की अवस्था मैली है, वह व्यवहार है और निश्चय से तो मिट्टी मैली है। मिट्टी मैली है, पानी मैला नहीं होता। **सो वह मैलापन रंग है,** आगंतुक भाव, मेहमान हुआ वह तो। **सो रंग को अंगीकार न कर बाकी जो कुछ है सो पानी ही है।** आहाहा! मिट्टी के भाव को गौण करो कि ये मिट्टी के भाव हैं,

यह लक्षण, स्वच्छता लक्षण पानी का है और मलिनता लक्षण मिट्टी का है। दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा जाने और फिटकरी डाले तो मैल जुदा पड़ जाये और स्वच्छ पानी प्रगट अनुभव में आये।

उसी प्रकार जीव की कर्मबंध पर्यायरूप अवस्था में रागादि भाव रंग है, आहाहा! रंग का व्यवकलन करना चाहिये। **सो रंग को अंगीकार न कर**, अर्थात् मैं रागी हूँ, ऐसे न मानकर, अंगीकार न करके अर्थात् 'रागी जीव है' ऐसी बुद्धि छोड़ दो। रागी जीव नहीं है, रागी पुद्गल है। **न कर बाकी जो कुछ है सो चेतनधातुमात्र वस्तु है।** आहाहा! ज्ञानमय आत्मा है, आत्मा रागमय नहीं है। रागी तो पुद्गल है, जीव तो ज्ञानमय है। स्वरूप तो ऐसा है। **इसी का नाम शुद्धस्वरूप-अनुभव जानन**, इसका नाम शुद्धात्मा का अनुभव **जो सम्यग्दृष्टि के होता है।** अथवा ऐसा अनुभव करे वह सम्यग्दृष्टि होता है। लो! हो गया समय।

मुमुक्षुः- भाई संवाद लेने का भाव है।

परमपारिणामिकभाव, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का संवाद

मुमुक्षुः- **मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।**
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥
सर्वमङ्गलमाङ्ग्ल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

अध्यात्मयुग प्रवर्तक महान कहान गुरुदेव की परंपरा में हुए महान विद्वान पूज्य श्री लालचंदभाई की साक्षी में, (पूज्य लालचंदभाई को) परमपारिणामिकभाव स्वरूप के स्थान पर रखकर हम दोनों सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का स्वांग धारण करके यह संवाद प्रस्तुत करते हैं।

उत्तरः- वे (संध्याबहन) सम्यग्दर्शन का स्वांग धारण कर रही हैं अभी और ये (नीलमबहन) सम्यग्ज्ञान हैं। इन दोनों का वादविवाद होगा। और परमपारिणामिकभाव यहाँ, वह आत्मा है।

मुमुक्षुः- परमपारिणामिकभाव वह तो स्वभाव ही है।

उत्तरः- ये तो स्वांग है, ये सब।

मुमुक्षुः- परमपारिणामिकभाव तो स्वभाव ही है।

मुमुक्षुः- सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान की जोड़ी, कोई नहीं सकता तोड़।

उत्तरः- एक साथ ही हैं न? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ ही प्रगट होते हैं, एक साथ रहते हैं। अब सम्यग्दर्शन बोलता है।

सम्यग्दर्शनः- हे परमपारिणामिकभाव स्वरूप ज्ञायक परमात्मन्! तुम्हें सम्यक् श्रद्धा का प्रणाम स्वीकार हो, स्वीकार हो, स्वीकार हो!

सम्यग्ज्ञानः- हे परमपारिणामिकभाव स्वरूप ज्ञायक परमात्मन्! तुम्हें सम्यग्ज्ञान का प्रणाम स्वीकार हो, स्वीकार हो, स्वीकार हो!

सम्यग्दर्शनः- दोनों मिलकर पुनः पुनः नमस्कार करके आपश्री की साक्षी में हम अपने स्वरूप

को प्रगट करते हैं।

सम्यग्ज्ञान:- हे श्रद्धा! मैं आत्मवस्तु को कथंचित् अभेद और कथंचित् भेदस्वरूप जानता हूँ। नित्य-अनित्य, एक-अनेक, अपरिणामी-परिणामी, द्रव्य-पर्याय स्वरूप, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् (मोक्षशास्त्र/तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ५, सूत्र ३०), अर्थात् कि वस्तु जैसी है ऐसी दो पहलूवाली जानता हूँ। तू भी मेरी तरह ही वस्तु को ऐसी मान, ऐसी मान!

सम्यग्दर्शन:- ना भाई ज्ञान! ऐसा नहीं बनता। ऐसा तो बनता ही नहीं। उसमें तो मैं मिथ्या हो जाऊँगी!

सम्यग्ज्ञान:- क्यों? क्यों मिथ्या हो जायेगी? मैं तो द्रव्य-पर्याय स्वरूप को जानता हूँ, उसमें मैं तो सम्यक् रहता हूँ। तू मिथ्या कैसे हो जायेगी? तू मिथ्या होने का भय मत कर। तू भी उसमें ही सम्यक् होगी। क्यों सही है न?

सम्यग्दर्शन:- अरे भाई ज्ञान! जिसमें तू सम्यक् रहता है उसमें मैं भी सम्यक् रहूँ, ऐसा नहीं है। क्योंकि हम दोनों का nature (स्वभाव) अलग-अलग है। मैं तो निर्विकल्प हूँ और मेरा विषय एक ही होता है। और मेरे में सर्वथापना ही होता है, मेरे में कथंचित्पना नहीं होता। मुझे कथंचित् आता ही नहीं है, मुझे जो दिखता है वह सर्वथा ही दिखता है। मैं क्या करूँ? मेरा स्वभाव ही सर्वथा के रूप में ही देखने का है।

सम्यग्ज्ञान:- हाँ श्रद्धा! वह तो ठीक है कि तेरा स्वभाव निर्विकल्प है, तेरे में सर्वथापना ही है।

सम्यग्दर्शन:- इसीलिये ही तो! हे भाई ज्ञान! अनंत-अनंतकाल से मैं अपने सर्वथा शुद्ध, परिपूर्ण, अनंत-अनंत गुणमय अभेद-ज्ञाता स्वभाव को सर्वथा अशुद्ध-अपूर्ण दोषी मानती थी। अब आपश्री की अनंत-अनंत परमकृपा से, आपश्री के शुद्धनय स्वरूप कल्याणकारी मार्गदर्शन से, आपने मेरे पूर्ण शुद्ध स्वरूप, परिपूर्ण कृतकृत्य परमात्मस्वरूप, स्वयं सिद्ध स्वरूप, आहाहा! भगवान आत्मस्वरूप दिखाया है, दर्शाया है। और मैंने भी अपने स्वरूप को ऐसा ही मान लिया है कि मैं तो नित्यनिरावरण-अखंड-प्रत्यक्षप्रतिभासमय परिपूर्ण ज्ञायक परमात्मा हूँ। सर्वथा शुद्ध ही हूँ, पूर्ण ही हूँ, निष्क्रिय शुद्ध ज्ञायकभावरूप ही हूँ, अभेद ही हूँ। मुझे इतना ही दिखाई देता है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी मुझे दिखता नहीं। उसमें ही मेरा सम्यक्पना है।

सम्यग्ज्ञान:- ऐसा! तू सर्वथा शुद्ध स्वभाव, परमार्थ स्वभाव से अभेद है, निर्विकल्प है। वाह! बहुत अच्छा। अब मैं तुझे कथंचित् का आग्रह कभी नहीं करूँगा।

सम्यग्दर्शन:- हाँ प्रभु ज्ञान! यदि मुझे कथंचित् में आने के लिये कहोगे तो मैं मिथ्या हो जाऊँगी। और मेरे मिथ्या होने पर तुम भी मिथ्या हो जाओगे। मेरे मरण के साथ ही तुम्हारा मरण भी जानो!

सम्यग्ज्ञान:- ऐसा! ओहोहोहो! तो मुझे ऐसा नहीं करना है। अनंतकाल से मैं भी तेरे सम्यक्पने के बिना मिथ्या रहा हूँ, कथंचित् के पक्ष में रहा हूँ, नित्य-अनित्य का ज्ञाता नहीं हुआ। अब हे श्रद्धा! तू अपने सर्वथा शुद्ध स्वभाव में निश्चल रह। मैं कभी तुझे कथंचित् में नहीं लाऊँगा।

सम्यग्दर्शन:- हाँ भैया ज्ञान! आत्मा तो सर्वथा शुद्ध ही है न? आहाहा! मैं तो परिपूर्ण, निर्विकल्प, अभेद परमात्मा हूँ। मैं तो सर्वथा नित्य ज्ञाता स्वरूप से ही हूँ। हे भाई ज्ञान! अब तुम भी जितना मैं

श्रद्धान करती हूँ उतना चैतन्य सामान्य आत्मा है, केवल उसे ही तुम भी आत्मा जानो, सर्वथा द्रव्य को ही जानो। तुम किसलिये पर्याय को जानते हो? वह तो परद्रव्य है न? तुम मेरी बात मानो कि अकेले द्रव्य स्वभाव को ही जानो। तुम भी सर्वथा में आ जाओ न?

सम्यग्ज्ञान:- अच्छा! हे श्रद्धा! जैसे तेरे स्वभाव में सर्वथा एकांत है ऐसा मेरे स्वभाव में सर्वथा एकांत नहीं है। मेरे स्वभाव में तो अनेकांतपना है, कथंचित्पना है, मैं स्याद्वादरूप हूँ। मैं यदि सर्वथा एकांत में जाऊँ तो मैं मिथ्या हो जाऊँगा, मर जाऊँगा।

सम्यग्दर्शन:- अरे! मैं तो सर्वथा में ही सम्यक् रहती हूँ और तुम सर्वथा में सम्यक् नहीं? तुम उसमें मिथ्या हो जाओगे? मर जाओगे?

सम्यग्ज्ञान:- हाँ! मैं सर्वथा एकांत में सम्यक् नहीं होता। सर्वथा में तू सम्यक् और कथंचित् में मैं सम्यक्। कथंचित् में तू मिथ्या और सर्वथा में मैं मिथ्या। अब तो हम दोनों का सम्यक् होने का काल पक गया है। क्योंकि हमारे ऊपर पूज्य श्री लालचंदभाई जैसा पारिणामिक स्वभाव मिल गया है न? अर्थात् अब तो दोनों के सम्यक् होने का काल पक गया है। इसीलिये तू सर्वथा शुद्ध परिपूर्ण मुक्त अभेद ज्ञायकभाव में ही रह और मैं भी तेरा जो आत्मा है वह ही मेरा आत्मा है, तुझे जो उपादेय है वह ही मुझे उपादेय है। उसमें तो मैं तेरे साथ हूँ, परंतु...

परमपारिणामिकभाव:- परंतु...

सम्यग्दर्शन:- परंतु...

सम्यग्ज्ञान:- परंतु जानने के लिये मुझे आपके अलावा दूसरा भी पहलू है।

परमपारिणामिकभाव:- है!

सम्यग्दर्शन:- हे ज्ञान! तुम शुद्धनय के स्वरूप में तो मेरे साथ हो। अर्थात् तुम मेरे साथ तो हो न! वह बहुत अच्छा, बहुत सुंदर, परंतु...

सम्यग्ज्ञान:- परंतु क्या? मेरी एक विशेषता है। मेरा स्वभाव ही सविकल्प है अर्थात् सब कुछ जानना। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, भेदाभेद स्वरूप, कथंचित् रहित और कथंचित् सहित, आत्मा और आत्माश्रित आनंद आदि को जानना ऐसा मेरा सहज स्वभाव है। और जब मैं संपूर्ण वस्तु द्रव्य-पर्याय स्वरूप को जानता हूँ तब ही तू भी सम्यक् नाम पाती है। उससे पहले तो तू भी मिथ्या थी। हे श्रद्धा! तेरे पक्ष से मेरा स्वभाव अकेला निश्चय से स्वप्रकाशक ही है। और ज्ञान की अपेक्षा से, अर्थात् जानने की अपेक्षा से मेरा स्वभाव निश्चय स्वपरप्रकाशक है, और व्यवहार स्वपरप्रकाशक भी है। क्यों ठीक है न?

सम्यग्दर्शन:- ठीक है।

अब परमपारिणामिकभाव सम्यक्श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान को आशीर्वाद देता है।

परमपारिणामिकभाव:- निर्दोष सम्यक् श्रद्धा! हे निर्दोष सम्यग्ज्ञान! तुम दोनों एकसाथ मिलजुलकर रहते हो, इसलिये सम्यक् एकांत पूर्वक अनेकांत होता है। वह बहुत अच्छा है। ऐसा ही तुम दोनों का स्वभाव है। सम्यक्श्रद्धा-सम्यग्ज्ञान स्वरूप ज्ञान-दर्शन जयवंत वर्तो। ध्येय पूर्वक ज्ञेय की संधि, स्वरूप वीतराग सर्वज्ञपना जयवंत वर्तो! जयवंत वर्तो!

सम्यक्श्रद्धा-सम्यग्ज्ञान दोनों मिलकर कहते हैं:- हे पारिणामिकभाव, हे परमपारिणामिकभाव स्वरूप परमात्मन्! हे प्रभो! हम दोनों आपके आश्रय से आपकी अनंत-अनंत कृपा से प्रगट हुए हैं। हमारा सर्वस्व तो आप ही हो। हम आपमयी ही हैं।

परमपारिणामिकभाव:- भले तुम दोनों कहते हो कि मेरे आश्रय से सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, परंतु ऐसा है नहीं। तुम प्रगट होते हो तब तुम्हारा लक्ष मेरे ऊपर है, इसलिये मेरे आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ, ऐसा उपचार आता है। वास्तव में तो तुम दोनों की पर्याय सत् - तुम्हारे से प्रगट हुई है। हम उसके कर्ता भी नहीं हैं और हम उसके कारण भी नहीं हैं, हम तो जाननहार हैं।

सम्यक्श्रद्धा-सम्यग्ज्ञान दोनों मिलकर कहते हैं:- जाननहार भगवान आत्मा की जय हो! ज्ञायक देव की जय हो! परमपारिणामिकभाव की जय हो!

मुमुक्षु:- स्वयंप्रभु की जय हो!

उत्तर:- सम्यक् एकांत पूर्वक अनेकांत ...

मुमुक्षु:- सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तत्काल की योग्यता, आपके कारण नहीं?

उत्तर:- ना बिल्कुल नहीं। हमें कारण-वारण कोई कहना मत। वे सब अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार पर्याय प्रगट होती हैं। हम तो अकर्ता और अकारण हैं। आहाहा! हम किसी का कारण-बारण नहीं हैं। पर्याय का कारण पर्याय में, पर्याय का कर्ता पर्याय है, मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ। मेरी उपस्थिति में होती है इतना ठीक है, परंतु मेरे कारण होती है, ऐसा है नहीं। ऐसा हमें कहना मत। आहाहा!

मुमुक्षु:- आपकी बात हमें शिरोमान्य है क्योंकि उसमें ही हमारा कल्याण है।

उत्तर:- तो ठीक, कल्याण है!

मुमुक्षु:- शिरोमान्य हुआ तभी तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ। उसमें ही हमारा कल्याण है।

उत्तर:- सही है। उसमें ही कल्याण है।

मुमुक्षु:- भाई! इतना अधिक निरपेक्ष और स्वतंत्र?

उत्तर:- हाँ! दो सत् अलग-अलग हैं भाई! किसी के कारण कोई है नहीं। द्रव्य के कारण पर्याय नहीं है और पर्याय के कारण द्रव्य नहीं है। दो सत् जब प्रत्यक्षपने स्वीकार करेंगे, निरपेक्ष, तब उसके बाद सापेक्ष का व्यवहार आता है, कि आत्मा के आश्रय से होता है, आत्मा की कृपा से हुआ, वह सब व्यवहार कहा जाता है।

मुमुक्षु:- वाह! परमपारिणामिकभाव की करुणा बहुत।

ॐ